पत्र

आपका संपादकीय हमेशा गौरतलब होता है। इसे पढ़े बिना निकल जाना एक बड़ी पाठकीय क्षति है। इस बार चार अंतरराष्ट्रीय फिल्मों को लेकर लिखा गया संपादकीय अत्यंत महत्वपूर्ण है। ये फ़िल्में अवश्य अमेरिका और आस्ट्रेलिया की हैं लेकिन इनकी विषय वस्तु स्थानीयता का अतिक्रमण करती आधुनिक रूप से अंतरराष्ट्रीय है। ये फिल्में मनुष्य की संघर्षशीलता और उदात्तता से भरपूर परिचित कराती हुई प्रभाव के बिन्दु पर अभिभूत कर देती हैं। आपका इन पर लिखना ही इसका प्रमाण है। आस्ट्रेलियन फ़िल्म लायन हो या अमेरिकन फ़िल्में ब्रिज आफ स्पाइज, हिडन फिगर्स और शिल्डलर्स लिस्ट , इन्हें हमने भी देखा नहीं है लेकिन इनके बारे में आपके बताने से हम इनकी विशिष्टता से अवगत होते हैं। आपका मक़सद भी यही था कि आपका लिखा पढ़कर कोई इन्हें देखना चाह सकता है। और यह सही है। इसने हमें इस दिशा में जिज्ञासु बनाया और प्रेरित किया। उपसंहार का तार्किक पक्ष भी पढ़ने और गुनने लायक़ होता है। इस बार फेसबुक पर डेटा चोरी को लेकर विश्वास- भंग और राजनीतिकरण को सही निशाने पर लिया गया है। अमरकांत जी की प्रसिद्ध कहानी हत्यारे का बीरज पाण्डेय द्वारा समाजशास्त्रीय मूल्यांकन पाठ बहुत अच्छा और प्रासंगिक है। कहानी के पात्रों की भाषा आज सोशल मीडिया से लेकर राजनीति और आम जीवन में आम हो गयी है। यह बेहद दुर्भाग्यपूर्ण है।

केशव शरण, वाराणसी 221002, मो. 9416295137

'अक्षर पर्व' के दोनों स्थायी स्तंभ 'प्रस्तावना' और 'उपसंहार' पढ़ता ही हूं। मुक्तिबोध अंक की 'प्रस्तावना' एक शब्द में सारगर्भित है। इतने कम स्पेस में युक्तियुक्त को आपने लगभग समेट लिया है तब के परिवेश समाहित। सर्वमित्रा ने अभिव्यक्ति के खतरे उठाना सीखें में जो कहा है वह कर लेना खेल नहीं है। एक कवि-कथाकार होने के नाते भी मैं यह कह रहा हूं। बाकी सामग्रियों में से सबसे पहले दिवाकर मुक्तिबोध का संस्मरण पढ़ा। मार्मिक है। मुक्तिबोध का लिखा 'रमाशंकर शुक्ल हृदय की स्मृति में' पढ़ा। एक बीए स्तर का छात्र और वैसी परिपक्वता! दंग रह गया। मुक्तिबोध ही लिख सकते थे वैसा। आशीष सिंह के 'स्फुट विचार' कुरेदने वाले हैं। वह सवाल सच ही आज (हम) सब कामरेडों को अपने आपसे पूछना चाहिए : 'पार्टनर आपकी पालिटिक्स क्या है!' यश मालवीय की कविता भी पढ़ी : 'मुक्तिबोधों की नई पीढ़ियां होंगी'। उसको अपनी एक पत्रिका 'दखल' (वास्तव में इसका मैं कुछ भी न हूं, मगर करता सब मैं ही हूं। में पुनर्प्रकाशित करने की इजाजत भी चाहता हूं। 'अक्षर पर्व' अपनी तरह की एक अलग किस्म की पत्रिका है। इसको पढ़ना अच्छा लगता है।

-देवेन्द्र सिंह

अक्षरपर्व दिसम्बर 17 की प्रस्तावना में प्राकृतिक एवं मानव निर्मित भारतीय धरोहरों की सुरक्षा की ओर प्रबुद्ध जनप्रतिनिधियों एवं राष्ट्रीय कर्णधारों का ध्यान आकृष्ट किया है, साथ ही उसके भयावह दुष्परिणामों के प्रति आगाह भी किया है। उपसंहार में सर्वमित्राजी ने प्रजा की अटूट जड़ता पर अपनी चिंता व्यक्त की है, क्योंकि इसी जड़ता का वर्तमान नेता-नुमाइन्दे भरपूर नाजायज़ लाभ उठाते हैं। कुछ विशिष्ट और कदाचित अछूती सामग्री के चलते यह अंक मुझे अपेक्षाकृत विशेष वज़नदार, मूल्यवान लगा है। सेवाराम त्रिपाठी ने परंपरागत मान्यता से हटकर राष्ट्रीयता को नए ढंग से व्याख्यायित किया है। हिन्दी साहित्य के कई मूर्धन्य कवियों के काव्योद्धरणों के प्रकाश में आपने निष्कर्षतः यथार्थ ही कहा है कि राष्ट्रीयता कोई दिखावे की चीज़ नहीं है, यह हमारा यथार्थ भी है और हमारे विकास का सपना भी। भूले-बिसरे शायर स्तंभ के तहत जहीर कुरेशी ने इस बार जिस बेचैन रूह शायर (अग्निवेश शुक्ल) की यादों और उनकी 14 ग़ज़लों के जरिए उनकी बाकमाल ग़ज़लगोई से परिचित करवाया, इसके लिए हम कुरेशीजी को भरपूर बधाइयां देना चाहते हैं, जिसके वे यकीनन मुस्तहक़ हैं। डा.शोभा निगम का आलेख उनकी तलस्पर्शी गहन शोधदृष्टि का परिचायक है। एकाधिक रामकथाओं के उद्धरणों के प्रकाश में डा.निगम ने वर्षों से भातृद्रोह के इल्जाम में कटघरे में खड़े रावण के भाई विभीषण को अपने जोरदार तर्कों के बल पर निर्दोष सिद्ध कर पूरे खुलोसो एहतराम के साथ बरी करवा दिया है। ब्रजेश कृष्ण की कविताएं और अरमान आसिफ इकबाल की मुक्त छंद की रचनाएं मर्मस्पर्शी हैं। अंक के श्रमसाध्य संपादन के लिए **साधुवाद**

प्रो.भगवान दास जैन, अहमदाबाद